भारत के समुद्री तटों पर समुद्री-शैवालों के संसाधन एवं उनकी जलकृषि क्षमता

जी. वी. देशमुख, वी. के. धारगलकर एवं ए. जी. ऊँटवाले

राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, गोवा

1. भूमिका

भारत की समुद्री तट रेखा करीब 7,200 कि. मी. लम्बी है। इन तटों पर समुद्री-शैवालों की 650 प्रजातियाँ (नीली-हरित शैवाल सहित) पायी जाती हैं। इसमें से सबसे अधिक 320 प्रजातियाँ रोडोफाइटा की तथा 165 व 150 प्रजातियाँ क्रमशः क्लोरोफाइटा व फीओफाइटा समूह की हैं। (तालिका 1)। राज्यवार क्रम में तमिलनाडु में सबसे अधिक 302 प्रजातियाँ, गुजरात में 202, महाराष्ट्र में 159, लक्षद्वीप में 89 तथा गोवा में 82 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। भारत के तटीय क्षेत्रों में पायी जाने वाली शैवालों का विस्तृत विवरण तालिका 2 में अंकित है।

2. समुद्री शैवालों के उपयोग

समुद्री शैवालों के संसाधनों व उसकी जलकृषि क्षमता के वर्णन से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि इन समुद्री शैवालों की क्या उपयोगिता है तथा क्यों इन्हें जलकृषि के योग्य जाना जाए। तालिका 3 में भारतीय तटीय-सीमाओं में पायी जाने वाली समुद्री शैवालों की विभिन्न प्रजातियाँ व उनकी आर्थिक उपयोगिताओं को दर्शाया गया है।

मूल अंग्रेजी लेख के अनुवादक, केन्द्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान के वैज्ञानिक श्री सुधीर रायजादा

तालिका 1

भारतीय समुद्री तटों पर पायी जाने वाली समुद्री-शैवाल की प्रजातियों का विवरण

	क्लोरोफाइटा	फियोफाइटा	रोडोफाइटा
ऑर्डर	4	5	6
फैमलीस	15	12	31
जनरा	45	39	120
प्रजातियाँ	165	150	320

तालिका 2

भारतीय समुद्री तटों पर पायी जानेवाली समुद्री-शैवालों का राज्यवार विवरण

क्र.	राज्य	ऑर्डर की संख्या	फैमलीस की संख्या	जनरा की संख्या	प्रजातियों की संख्या
1.	गुजरात	15	42	105	202
2.	महाराष्ट्र	16	40	76	152
3.	गोवा	13	29	48	75
4.	कर्नाटक	12	19	28	39
5.	केरल	8	10	14	20
6.	लक्षद्वीप टापू	13	29	51	89
7.	तमिलनाडु	15	45	128	302
8.	आन्ध्र प्रदेश	14	29	51	79
9.	उड़ीसा	-	-	-	-
10.	पश्चिम बंगाल	3	4	5	6
11.	अंदमान व निकोबार टापू	8	15	23	34

2.1 खाने में उपयोग

समुद्री शैवालों की कुछ प्रजातियाँ जैसे *कौलेरपा, अल्वा, सारगैसम, पौरीफायरा, ग्रेसीलेरिया, एकेन्थोफोरा* मुख्यतयः खाने के उपयोग में आती हैं। समुद्री शैवालों में विटामिन 'ए', 'बी', 'बी-12' तत्व अन्य कई खाद्य पदार्थ से अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। तालिका 4 में कुछ हरी व लाल शैवालों में उपस्थित पोषक तत्वों को दर्शाया गया है। पौरीफायरा प्रजाति सबसे अधिक प्रोटीन व विटामिनों के लिए विख्यात है। *अल्वा* प्रजाति में कैलशियम व *एन्टेरोमोरफा* में फायब्रस व

तालिका 3

समुद्री-शैवाल की प्रजातियाँ तथा आर्थिक उपयोगिताएं

समुद्री-शैवाल की प्रजातियाँ	आर्थिक उपयोग
अल्बा फेसियटा	खाने योग्य व जैव सक्रिय (बायो एकटिव)
अल्बा लैकटुका	खाने योग्य
एन्टेरोमोरफा प्रजातियाँ	खाने योग्य तथा जैव सक्रिय
मोनोस्ट्रोमा प्रजातियाँ	खाने योग्य
डिकटायोटा प्रजातियाँ	जैव सक्रिय
पैडीना प्रजातियाँ एलजीनेट तथा जैवसक्रिय	
सारगैसम प्रजातियाँ	एलजीनेट तथा जैवसक्रिय
पौरफरा वियतनामैनसिस	खाने योग्य
गैलीडीयम पुसीलम	एगार
गैलीडीला एसीरोजा	एगार
हिपनीया प्रजातियाँ	एगार
हिपनीया प्रजातियाँ प्रजातियाँ	कैरागीनन तथा खाद
कैनड्रीया आरमेटा	जैव सक्रिय
एकेन्थोफोरा स्पासीफैरा	खाने योग्य तथा जैव सक्रिय

स्रोत : छपे आंकड़े

तालिका 4 ए

हरी व लाल समुद्री-शैवालों की पौष्टिक उपयोगिताएं

			कार्बोहाइड्रेट्स		
समुद्री-शैवाल	प्रोटीन	वसा	नॉन फ्राइब्रस	फ्राइब्रस	ऐश
पौरफरा	43.6	2.1	44.0	2.0	7.8
अल्वा	26.1	0.7	46.1	5.1	22.6
एन्टेरोमोरफा	19.5	0.3	58.1	6.8	15.2
मोनोस्ट्रोमा	20.0	1.2	57.2	6.7	14.9

स्रोत : निशीजीवा

नॉनफायब्रस कार्बोहाइड्रेट्स अधिक मात्रा में होते हैं। हमारे देश में यह प्राकृतिक साधन बहुतायत में उपलब्ध होने के बावजूद भी इनका उपयोग (**ग्रैसीलिया** को छोड़कर) बहुत कम है जिसे केरल व तमिलनाडु राज्यों के तटों में दलिया बनाने में प्रयोग किया जाता है।

2.2 चारे में उपयोग

समुद्री शैवालों को कुक्कुट चारा में मिलाने से आयोडीन की मात्रा बढ़ जाती है तथा अण्डे की जर्दी (योक) का रंग अच्छा हो जाता है। इसलिए इन शैवालों का उपयोग कुक्कुट, मवेशी व अन्य पशु आहारों में किया जाता है। मवेशियों के चारे में *अल्वा, एन्टेरोमोरफा, ग्रेसिलेरिया, हिपनिया, सारगैसम, पैडीना, डिकटायोटा* आदि प्रजातियाँ उपयोग में लायी जाती हैं। इसी प्रकार कुक्कुट चारा, समुद्री शैवालें व पिसी मछली मिलाकर बनाया जाता है। इंडियन वैटनरी रिसर्च संस्थान, इज्ज़तनगर व गवर्मेन्ट वैटनरी कालेज, मद्रास ऐसे संस्थान हैं जहाँ समुद्री शैवालों की पशु चारे में उपयोगिता विषय पर शोध कार्य किया जाता है।

2.3 खाद में उपयोग

तटीय क्षेत्रों में समुद्री-शैवालों का प्रयोग खाद के रूप में काफी प्रचलित है। इन शैवालों में विद्यमान कार्बोहाइड्रेट, ग्रोथ हॉरमोन्स तथा कार्बनिक पदार्थ मिट्टी की संरचना में ऐसा परिवर्तन कर देते हैं जिससे उनकी जलधारण क्षमता बढ़ जाती है। शैवालों से बनी खाद में विद्यमान खनिज तत्व व सूक्ष्म तत्व (ट्रेस-एलिमेन्ट्स) इन तत्वों की कमी से हुई बीमारियों का निदान करते हैं तथा पैदावार बढ़ाते हैं (3,4)। भारत में तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि के तटों में समुद्री शैवालों मुख्यतया सारगैसम प्र. व *ग्रेसिलेरिया प्र.* को खाद के रूप में नारियल के पेड़ों व धान के खेतों में उपयोग में लाया जाता है। महाराष्ट्र के मालवण स्थान पर *हिपनिया मस्सीफोरमिस* और कर्मा-कर्मा *सारगैसम* को नारियल के पेड़ों में खाद के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

2.4 दवाओं में उपयोग

समुद्री-शैवालों का दवाओं में उपयोग ईसा से करीब 3,000 वर्ष पूर्व जाना जाता है। चीनी व जापनियों ने समुद्री-शैवालों का उपयोग *घेंघा* (गोएटर) व अन्य ग्रन्थि रोगों के निदान के लिए किया है। *कौनड्रस क्रिसीपस, ग्रेसिलेरिया,*

तालिका 4 बी

समुद्री-शैवालों में खनिज तत्व व विटामिनों की स्थिति

समुद्री शैवाल की प्रजाति	खनिज तत्व (मि. ग्रा. %)					विटामिन (मि. ग्रा.%)			
	कैल्शियम	फास्फोरस	आयरन	सोडियम	पोटेशियम	ए	बी 1	बी 2	नियेसिन सी
पौरफरा	440	650	13.0	570	2300	16000	1.29	3.82	11.0
अल्वा	1120	94	6.2	3183	731	590	0.08	0.57	11.8
एन्टेरोमोरफा	910	800	35.0	570	3500	13000	0.60	2.05	6.5
मोनोस्ट्रोमा	690	2000	2.5	1800	810	27000	0.43	1.33	3.5

गैलीडियम प्रजातियों का उपयोग आमाशय व आंत्र रोगों के निदान के लिए किया जाता हैं। कैरागीनन, घाव के उपचार तथा एल्डीनेट्स कुछ दवाओं की कार्यक्षमता बढ़ाने में सक्षम पाया गया हैं। इसी प्रकार कुछ शैवालों में जैव-सक्रिय पदार्थों (बायो-एक्टिव कम्पाउंड्स) का समावेश देखने में आया है जैसे काउक्षेरप प्र. में "हाइपोटेन्सिव", *एकेन्थोफोरा स्पाईसीफेरा* तथा *हिपनिया मस्सीफोरमिस, एन्टिफर्टिलिटी, स्टोकोस्परमम मारजिनेटम* व *पेडीना टेट्रास्टोमेटिका* में स्पास्मोलेटिक तथा *सारगैसम में* सी. एन. एस.।

2.5 एगार रूप में उपयोग

एगार एक कोलॉइडीय कार्बोहाइड्रेट जिलेटिन है जो लाल-शैवालों की कोशा भित्ति में पायी जाती है। *गैलीडीला ऐसीरोजा, ग्रेसिलेरिया ऐडुलिस, ग्रे. वेरूकोसा, ग्रे. कोल्टीकेटा, गैलीडियम, एमेन्सी, ग्रे. पुसीलम* तथा *टीरोक्लेडिया* प्रजाति से एगार निर्माण होता है। एगार के निम्नलिखित उपयोग हैं :

अ. एगार का उपयोग खाद्य उद्योग जैसे कन्फैक्शनरी में गाढ़ा करने व जैलिंग एजेन्ट्स के रूप में होता है।

ब. दस्तावर (लेक्सेटिव) दवाओं के निर्माण में।

स. एगारोज का उपयोग क्रोमेटोग्राफी व इम्यूनो-इलेक्ट्रोफोरेसिस तकनीकों में होता है।

द. बायो-इंजीनियरिंग में "बीड्स" के लिए कच्चे पदार्थ के रूप में तथा क्रोमेटोग्राफी कॉलम द्वारा प्रोटीन अलग करने में उपयोग होता है

ध. सूक्ष्म-जीव विज्ञान (माइक्रोबायोलॉजी) व ऊतक-संवर्धन (टिशू कल्चर) में इसका उपयोग कल्चर माध्यम के रूप में होता है।

2.6 ऐल्जीनेट्स रूप में उपयोग

प्रमुख पौलीसेकेराइड एलजिन भूरी-शैवालों की कोशा भित्ति में पायी जाती है तथा यह डी-मैनुरोनिक व डी. गुलुरोनिक अम्ल के विभिन्न मात्रा में मिलने से बनती है। भारत में एलजिन निर्माण के लिए *सारगैसम व टरबीनेरिया* को कच्चे माल के रूप में उपयोग किया जाता है, क्योंकि यह अधिक उपजाऊ होने के साथ ही बहुतायत में उपलब्ध होता है। ऐल्जीनेट्स का सघन उपयोग औषधि-निर्माण, सौन्दर्य-प्रसाधन उद्योगों, कागज उत्पाद, कपड़ा उत्पाद, पेन्ट

उद्योग, दुग्ध उत्पाद जैसे मिल्क शेक, जैम बनाने में, जैलिंग एजेन्ट के रूप आदि में किया जाता है। इसकी ससपेन्शन विशेषता का उपयोग एंटीबायोटिक्स व कीटनाशकों के निर्माण में किया जाता है। एल्जीनेट्स दांतों के सांचे बनाने के भी काम आते हैं।

2.7 कैरागीनन रूप में उपयोग

कैरागीनन फाइकोकोलाइड है जो कई लाल-शैवालों से निकाले जाते हैं। रासायनिक तौर से यह उच्च कोटि का सल्फेट युक्त गेलेक्टेन्स तथा सख्त एनआयन पौलीमर्स है। कैरागीनन का उपयोग जैल बनाने, गाढ़ा करने अथवा ससपेन्शन तैयार करने में होता है। यही कारण है इसका प्रयोग इमलशन स्टैबिलाइजेशन के लिए किया जाता है। इसका उपयोग खाद्य पदार्थों, खासतौर से डेरी में भी होता है। कैरागीनन पैदा करने वाली प्रमुख समुद्री शैवाल *हिपनियां* है।

3. भारतीय संसाधन

विश्व में समुद्री-शैवाल का उत्पादन लगभग 6,500,000 टन (गीला वजन) है तथा भारत के पूर्वी व पश्चिमी तटों से इसकी पैदावार लगभग 70,000 टन प्रतिवर्ष है। यह विश्व उत्पादन का कुल 1.09 प्रतिशत है। कच्छ की खाडी (गुजरात) में इसका उत्पादन सबसे अधिक व तमिलनाडु में द्वितीय स्थान पर है। हिन्द महासागर से इसकी उत्पादन क्षमता 8,70,000 टन (गीला भार) है लेकिन हिन्द महासागर के पश्चिमी एवं पूर्वी तटों से 2,20,000 टन लाल शैवाल तथा 6,50,000 टन भूरे शैवाल की उपज प्राप्त की जाती है।

समुद्री-शैवाल उद्योगों द्वारा भारत में करीब 60 टन प्रति वर्ष एगार पैदा किया जाता है जिसमें से 50 प्रतिशत उपयोग ज़ीवाणु-विज्ञान जन्य ग्रेड के रूप में होता है। भारत में प्रमुख एगार बनाने वाले उद्योग हैं - निल्लई एगार-एगार इन्डस्ट्रीज, तिरूनेल्र्वेली, जैल प्रोडक्ट्स (प्रा.) लिमिटेड, गुजरात, सैलुलोज प्रोडक्ट्स ऑफ इंडिया, गुजरात, साउथ-सी केमिकल्स ऑफ आन्ध्र प्रदेश, सी प्रोडक्ट्स ऑफ इंडिया, महाराष्ट्र, कोचीन एगार एण्ड कैमिकल्स, केरला। हानिकारक न होने के कारण एगार का उपयोग शराब, बीयर, हैन्ड-लोशन आदि बनाने में होता है। सौन्दर्य-प्रसाधनों, क्रीमों, साबूनों आदि बनाने में भी एगार का इस्तेमाल होता है। यह कपड़े पर सज्ञीकरण करने, कागज व कपड़ा को वाटरप्रूफ करने गोंद बनाने, तरल पदार्थों को साफ करने, चमड़े पर चमक देने आदि के काम भी आता है।

आज भारत में एगार व एलजिन बनाने वाले उद्योग अपनी क्षमता का 45 प्रतिशत से भी कम उत्पादन कर रहे हैं। इसका कारण प्राकृतिक समुद्री-शैवाल संसाधनों की कमी होना है। जो गलत विधियों से फसल कटाई करने के कारण हो रही है। भारत 15,000 टन एगार पैदा करने वाली शैवालों का आयात उद्योगों का मांग पूरी करने के लिए करता है। इससे जाहिर है कि हालांकि हमारे पास लम्बी समुद्री रेखा है फिर भी समुद्री-शैवाल का उत्पादन अपर्याप्त है। ऐसी स्थिति में ऐसे कदम उठाने की आवश्यकता है जिससे समुद्री-शैवाल संपदा के मामले में हम आत्म-निर्भर बन जाएं।

4. जलकृषीय क्षमता

भारत में समुद्री जलकृषि (मैरीकल्चर) के लिए उपयुक्त समुद्री-शैवाल प्रजातियाँ अथवा उनकी व्यापक खेती की दिशा में नगन्य ध्यान दिया गया है। इस दिशा में ज्यादातर संग्रहण बड़े ही अव्यवस्थित रूप से आवश्यकता पड़ने पर किया गया है तथा मूल स्रोत को दोबारा स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया गया है जिसके कारण मांग वाली प्रजातियाँ प्राकृतिक स्थलों से प्रायः लुप्त होती जा रही हैं। अतः आवश्यकता है कि समुद्री जलकृषि द्वारा इनका उत्पादन हम जल्द से जल्द प्रारंभ करें।

भारत में बड़े पैमाने पर समुद्री-शैवालों की खेती प्रारम्भिक पायलट आधार पर की जा चुकी है। इस दिशा में सर्वप्रथम थिवी [10] द्वारा कृत्रिम तालाबों में सारगैसम संवर्धन की सूचना दी गई।

समुद्री-शैवाल की जलकृषि के लिए उपयुक्त स्थान का चयन अत्यन्त ही आवश्यक है। सामान्यता जलकृषि के लिए ऐसे स्थान जहाँ संवर्धन योग्य प्रजातियाँ प्राकृतिक रूप में पायी जाती हैं, सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं। परन्तु यदि संवर्धन ऐसे स्थान पर करना है जहाँ प्रजाति नहीं पायी जाती है तब चयन किए स्थान की परिस्थितिकी (Ecology) उसके प्राकृतिक स्थान के समान होनी चाहिए।

आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त समुद्री-शैवाल की जो प्रजाति संवर्धन के लिए लक्षित की जाए वह अधिक उपज देने वाली तथा वेजीटेटिव प्रोपेगेशन अथवा बीज स्पोर्स द्वारा बढ़ाई जा सकने वाली हों। बड़े व स्वस्थ थैलस वाली प्रजातियों को वरीयता दी जाती है जिससे कि वह कम समय में अधिक मात्रा में (बायोमास) उत्पादित कर सकें।

समुद्री-शैवाल की प्रजातियों में अच्छे गुण का फाइकोकोलोइड समुचित मात्रा में होना चाहिए। इस विचार को मद्देनजर रख, आवश्यकता है कि पायी जाने वाली प्रजातियों को भली-भांति छांट लें। इसके लिए चुनी जाने वाली प्रजाति की उत्पादन क्षमता का तुलनात्मक विश्लेषण कर लेना चाहिए। स्पोर्स को बीज रूप में प्राप्त करने की दो विधियाँ हैं। प्राकृतिक स्पोर्स की वृद्धि करना तथा हैचरी में उत्प्रेरित स्पोर्स बीजारोपण करना। प्राकृतिक स्पोर्स वृद्धि विधि में कृत्रिम स्थल जैसे नायलोन रस्सियाँ अथवा नारियल जटा की रस्सियों से बने जाल घनी शैवालों के मध्य लगा दिए जाते हैं। इन जालों पर छूटे हुए स्पोर्स जमा हो जाते हैं जिन्हें सीधा फिर जलकृषि के लिए उपयोग कर लिया जाता है।

विभिन्न प्रकार के आधार जैसे कंकड़ी, सीपियों अथवा रस्सियों को बीजारोपण में उपयोग में लाया जा सकता है। यह सामान बीजोरोपण हौदियों की तली में रख दिया जाता है। इन आधारों के ऊपर फिर संचय माल डालकर 2-3 दिन के लिए बीजारोपण के लिए छोड़ देते हैं। बीजारोपण के लिए इसे अधिकतम एक हफ्ते के लिए छोड़ा जा सकता है।

समुद्री-शैवाल के उत्पादन के लिए जलकृषि की कई विधियाँ उपयोग में लाई जाती हैं। इन विधियों का उपयोग, संचय-माल की उपलब्धता, बढ़त दर, उत्पादन विधि व उपयुक्त स्थल आदि पर निर्भर करता है। इन विधियों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

4.1 तालाब संवर्धन

ग्रेसिलिया का तालाब में संवर्धन सबसे पहले 1962 में ताइवान में प्रारम्भ हुआ। तालाब में संवर्धन मुख्यतः तीन कारकों, लवणीयता, प्रकाश व तापक्रम से प्रभावित रहता है। तालाब स्थल, समुद्री तथा मीठे पानी के स्रोत के पास होना चाहिए। स्थल तेज हवाओं से सुरक्षित होना चाहिए। तालाब का आकार औसतन एक हेक्टर या छोटा होना चाहिए। बड़े तालाब की अपेक्षा छोटे तालाब का प्रबन्ध आसान होता है क्योंकि यह बाहरी दबावों से कम संवेदनशील रहता है। इन तालाबों की गहराई 50 से 80 से. मी. हो सकती है।

4.2 रस्सी-जाल प्रौयोगिकी

इस विधि में नारियल की जटा अथवा नायलोन की रस्सियों से बने जाल जिनकी जाली का आकार 7.5 सें. मी. से 15 से. मी. का हो प्रयोग किया जाता

है। यह जाल तटीय जल में सीमेंट कंक्रीट से बने पिंडों से अथवा लंगर तथा प्लास्टिक अथवा फाईबरग्लास फलोट्स या बासों द्वारा जल में लटका दिए जाते हैं। सामान्यतः जालों को न्यूनतम निम्न, ज्वार-भाटा से नीचे लगाते हैं।, जिससे फसल को अधिकतम सूर्य-प्रकाश, खनिज तत्व व ऑक्सीजन मिलती रहे। शैवालों के 4 से 5 से. मी. लम्बे शीर्षस्थ टुकड़े रस्सियों के बीच नायलोन के मुलायम धागों से बाँध दिए जाते हैं। इन जालों को फिर 2-3 महीनों तक जल में पड़ा रहने दिया जाता है। रस्सियों के टुकड़ों को ऐसे समय व स्थान पर रखा जाता है जिससे कि वंछित प्रजातियों से छूटे स्पोर्स रस्सियों पर एकत्रित हो जाएं और बीजारोपण हो जाएं। एक बार यह क्रिया प्रारम्भ होने पर, रस्सियों को फिर से काटकर जल में लटके जालों में बांध दिया जाता है।

4.3 कोरल पत्थरों में (तलहटी संवर्धन)

इस विधि में कोरल पत्थरों को शैवालों की वांछित प्रजातियों के प्राकृतिक स्थलों पर रख दिया जाता है। इस पर निश्चित समय में बीज (स्पोर्स) जमा हो जाते हैं तथा बीज का बीजारोपण हो जाता है। तब इन्हें उत्पादन स्थल पर स्थान्तरित कर दिया जाता है। यह विधि छोटे आकार की समुद्री-शैवालों के लिए उपयुक्त है, *जैसे गैलीडीला* । इस विधि का उपयोग, समुद्र-वन संवर्धन में जहाँ शैवाल न हो अथवा कम हो, किया जा सकता है।

4.4 क्षेत्र संवर्धन

शैवालों का लम्बी रस्सियों में बीजारोपण करने के लिए शैवाल के टुकड़े गुच्छों के रूप में रस्सी की ऐंठन खोलकर धागों के बीच लगा दिए जाते हैं। ऐसा करने में पौध 2 या 3 बार रस्सी के बीच से गुजरती है। बीजारोपण छायादार जगह में किया जाता है तथा पौधों को सूखने से बचाने के लिए समुद्री पानी से भरी नांद (बेसिन) में रखते हैं। यही तकनीक बीज को रस्सियों में उपजाने के लिए प्रयोग की जाती है। भारत में लम्बी रस्सियों का प्रयोग किया जाता है तथा रस्सियों को जमीन छूने से बचाने के लिए अतिरिक्त लट्ठे लगा दिए जाते हैं। जमीन से इन बीजित रस्सियों की ऊँचाई, जल की गहराई व पारदर्शता जो ज्वार-भाटा बदलाव पर निर्भर है तथा खेती वाली प्रजाति पर निर्भर करती है।

चट्टानें, सीपीयाँ, बाँस या लकड़ी के तने आदि कृत्रिम आधार स्थल पर लगाने से बीज व थैलस को चिपकने के लिए अतिरिक्त उपयुक्त स्थान मिल

जाता है। बीज की बढ़त तथा उत्तरजीविता ठोस सतह पर अत्याधिक बढ़ जाती है।

भारत में एक और विधि 'रेफ़ट कल्चर' प्रयोग की जाती है। इस विधि में 2×2 मीटर तैरते रैफ़ट में रस्सियों को 7 से. मी. जाली में बुन लिया जाता है। बीजारोपण कि विधि पूर्वभांति रहती है।

भारत में समुद्री-शैवालों की खेती पर शोध कार्य अभी भी प्रारम्भिक (पायलट) स्थिति में है। सामान्यतः इस कार्य के लिए जूट या नायलोन रस्सियों व कोरल पत्थरों का उपयोग होता है समुद्री-शैवालों की खेती की तकनीक *गैलीडीला, ग्रेसिलेरिया, हिपनीया और एन्टेरोमोरफा* प्रजातियों के लिए विकसित हो चुकी है[13, 14, 15]।

6. समुद्री-शैवाल की जलकृषि की कठिनाइयां

समुद्री-शैवाल की बड़े पैमाने पर जलकृषि में विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कुछ प्रमुख कठिनाइयों की चर्चा नीचे की जा रही है:

1. अकशेरूकी-जीवों (इनवर्टीब्रेट्स) द्वारा शैवालों का चरना एक सामान्य समस्या है। इसके अतिरिक्त मछलियों की कई प्रजातियाँ हैं जैसेः रैबिट फिश (सिगनस प्रजाति), जो मन्डपम में ग्रेसीलिया की उपज के विनाश के लिए दोषी मानी जाती है। ऐसा पाया गया है कि 'फाइक जाल' के प्रयोग रेबिट-फिश को चरने से काफी हद तक रोका जा सकता है।
2. अधिपादपीय (एफीफिटिक) शैवालों की बड़े आकार की प्रजातियों पर बढ़त। अक्सर *एन्टेरोमोरफा, कीटोमोरफा, स्पैसीलेरिया, सेन्ट्रोसिरास, सिरेमियम* प्रजातियाँ बड़े आकार की प्रजातियों जैसे *ग्रेसिलेरिया* तथा *सारगैसम* के ऊपर उगती दिखाई देती हैं।
3. मानवीय हस्तक्षेप जैसे रैफ़ट, रस्सियों का खेतों से चोरी कर लेना [13]।
4. भौतिक व रासायनिक कारण जैसे जल में भारी मात्रा में "ससपेंडिड लोड" व तापमान परिवर्तन आदि समुद्री-शैवाल पैदावार पर कुप्रभाव डाल सकता है।
5. कटाई की अवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग जैसे जड़ सहित पूरा थैलस उखाड़ लेना। इससे आनेवाले वर्षों में कम पैदावार हो सकती है।

6. सुखाने व भंडारण के अनुपयुक्त साधन के कारण शैवाल की उपज खराब हो जाती है।

आज समुद्री-शैवालों पर शोध की आवश्यकता है जिससे ऊतक-संवर्धन (टिशू-कल्चर) द्वारा समुद्री-शैवालों के "स्ट्रेन्स" सुधारने के लिए गहन अध्ययन किया जा सके तथा साथ ही उसके जैव-रासायनिक पहलुओं का भी अध्ययन किया जा सके।

6. संसाधनों का संरक्षण

फ़ाइकोकोलोइड उद्योगों, आहार व चारे के लिए कच्चे पदार्थ के रूप में समुद्री-शैवाल की बढ़ती मांग को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि हम विस्तृत पैमाने पर खेती कार्यक्रम प्रारम्भ करें। जैसा कि पहले बताया गया है, समुद्र-शैवालों की कुछ प्रजातियाँ अति-कटाई एवं मानवीय हस्तक्षेप के कारण प्रायः लुप्त हो गई हैं। समुद्री-शैवालों को इस प्रकार के खतरे से उतारने तथा उपलब्ध संसाधनों के प्रबन्ध के लिए, निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं। ताकि समुद्री-शैवालों की जैविक-विविधता का संरक्षण किया जा सके।

1. ऐसे स्थान जहाँ प्राकृतिक रूप में कीमती समुद्री-शैवाल अच्छी मात्रा व गुणों में मिलती हो, उन्हें सुरक्षित समुद्री स्थान घोषित किया जाए तथा समुद्र-उद्यानों में परिवर्तन किया जाए। भारत में मलवान (महाराष्ट्र राज्य), पाकवे (तमिलनाडु), लक्षद्वीप और अंदमान व निकोबार आदि स्थानों को समुद्री-उद्यानों के लिए चयनित किया जा सकता है।
2. आर्थिक रूप से उपयोगी व लुप्त-प्रायः समुद्री-शैवाल की प्रजातियों को सुरक्षित रखा जाए जिससे विस्तृत पैमाने की खेती के लिए उनके बीज उपलब्ध कराए जा सकें तथा जहाँ अत्याधिक मात्रा में समुद्री-शैवालें काट ली गई हैं वहाँ नवीकरण किया जा सके।
3. समुद्री-शैवालों में जैविक-विविधता की सुरक्षा के लिए जीन-बैंक स्थापित किए जाएं।
4. व्यवसायिक रूप से उपयुक्त समुद्री-शैवालों की विस्तृत पैमाने पर उपज प्राप्त करने तथा विपणन की सुविधा उपलब्ध करायी जाए।
5. वाणिज्यिक कटाई तकनीक को प्रचलित लिया जाए जिससे पारिस्थितिकी पर कम से कम असर पड़े।

6. फसल प्रोसेसिंग की उचित व्यवस्था की जाए।
7. सरकारी विभागों की स्थापना की जाए जिससे समुद्री-शैवाल कटाई समुचित फसल प्राप्ति, खरीद और प्रोसेसिंग इकाईयों जो संसाधन प्रबन्ध में आते हैं, की समुचित देखरेख हो सके।

7. संदर्भ

1. ऊँटवाले ए. जी., वी. के. धारगलकर तथा वी. वी. अगधी (1983), लिस्ट ऑफ मैरीन एलगी फ्रॉम इंडिया, नेशनल इन्स्टिट्यूट ऑफ औसिनोग्राफी, टेक्निकल रिपोर्ट।
2. निसीजीवा के. (1988), प्रोडक्शन एण्ड यूटीलाइजेशन ऑफ प्रोडक्ट्स फ्रॉम कर्मशियल सीविड, सम्पादन डी. जे. मैकह्यूग, एफ. ऐ. ओ., 288, 147-189।
3. मुखारी सईदा तथा ए. जे. ऊँटवाले (1975),सीवीड लिक्विड फर्टिलाइजर एण्ड फोलियर स्प्रे सीवीड रिसर्च यूटीलाइजेशन, 3, 71-78।
4. धारगलकर वी. के. तथा ए. जी. ऊँटवाले (1980) सम आवजरवेशन्स ऑन दी इफेक्ट ऑफ सीवीड लिक्विड फर्टिलाइजर ऑन दी हायर प्लान्ट्स। प्रोसीडिंग्स नेशनल वर्कशाप ऑन एल्गस सिस्टम। सम्पादन शेषाद्री पी.सी. एण्ड जी. जी. वाई, 63-73।
5. नकवी एस. डब्ल्यू. ए., ऐ, सोलोमाबी, एस. वाई. कामत, एल. फर्नेडीज तथा सी. वी. जी. रेड्डी (1981), स्क्रीमिंग ऑफ सम मैरीन प्लान्ट्स फ्रॉम दी इंडियन कोस्ट फॉर बायोलोजिकल एक्टीविटी। बोट. मैर. 24, 51-55।
6. कामत एस. वाई., एस. वहीदुल्ला, एल. डी. डीसूजा, सी. जी. नाईक, वी. अम्बीए, डी. एस. भकुनी, ए. के. गर्ग तथा आर. सी. श्रीमल (1992), वोट. मैर. 35, 161 -164।
7. ऊँटवाले, ए. जी., वी. के. धारगलकर तथा वी. वी. अगधी (1981), मैरीन एल्गस रिर्सोसिस ऑफ द इंडियन कोस्ट फार आर. एण्ड डी. टेक्निकल।
8. मिचानेक जी. (1989), बी ओ बी पी/ रैप/45, 37-39
9. मिचानेक जी. (1975), सीवीड रिर्सोसिस ऑफ द ओशन। एफ. ए. ओ. फिश. टैक. रैप. एन. आई. ओ. 138 पेज।
10. थिवी (1964), मैरीन एल्गर कल्टीवेशन। साल्ट रेस. इन्ड., 1, 23-284।
11. हैन एच. सी. (1985), *रैव इन्वैस्ट. पैस्क. मपूतो,* 14,44-85।
12. कोपेन जे. जे. डब्ल्यू (1989), *बी ओ बी पी /रैप/45, 25-26।*
13. चियांग वाई. एम. (1981), *प्रोक. इन्ट. सीवीड. सिम्प.* 10, 569-574।
14. पटेल जे. बी., बी. वी. गोपाल, वी. आर. नगुलम, के. सुब्बारमैया तथा पी. सी. थामस (1979), एक्सपैरीमैन्टल फील्ड कल्टीवेशन ऑफ *गेलीडीला एसिरोजा एट इरवाडी,* इन्डिया। *इन्ड. प्रोक. सिम्प. कोस्टल एक्वाकल्चर* 4, 1342-1343।

15. ऊँटवाले ए. जी., वी. के. धारगलकर, वी. वी. अगधी, जी. वी. देशमुख तथा सी. आर. के. रेड्डी (1985), स्टेन्डर्डाजेशन टेकनीक फार सीवीड कल्टीवेशन। नेट. इन्स्ट. ऑफ ओसेनोग्रे. टैक. रैप.।
16. सुब्बारमैया के. तथा पी. सी. थामस. (1990), रैफ्ट कल्टीवेशन ऑफ ग्रेसीलेरिया एडुलिस (जैमी) सिल्वा। प्रौक. इंडियन एकेड. सा., 100, 123-127।
17. कलकमान आई. आई. राजेन्द्र तथा सी. एल. एंजेल (1991), बी ओ बी पी/डब्ल्यू. पी. 65, 1-15।
18. कृष्णामूर्ति वी. (1967), मैरीन एल्गर कल्टीवेशन - नैसेसिटी, प्रिंसपिल्स एण्ड प्रॉबल्मस, प्रोसिडिंग ऑफ सेमिनार - सी, साल्ट प्लान्ट्स, 327 - 333।
19. ओझा आर. एम., ए. तिवारी, एच. वी. जोशी तथा ओ. पी. मैर (1985), स्वीमर प्रोडक्शन एण्ड कल्टीवेशन ऑफ अल्वा फेसियेटा डिलायल इन इन्टरटाइडल रीजन एच ओरवा, वैस्ट कोस्ट ऑफ इंडिया, इंडियन ज. मैर. साई., 14, 217।
20. ऊँटवाले ए. जी., वी. के. धारगलकर, टी. जी. जगताप, वी. वी. अगधी, जी. वी. देशमुख तथा सी. आर. के. रेड्डी (1985)।
21. साइलस ई. जी., वी. एस. के. चेनुमोटला तथा एन. कालीयापेरूमल (1986), *सीवीड रिर्सोसेज, प्रोडक्ट्स एण्ड यूटीलाइजेशन। सीवीड रिस. यूटिल,*।, ।।
22. ऊँटवाले ए. जी., वी. के. धारगलकर, तथा जी. वी. देशमुख तथा सी. आर. के. रेड्डी (1988), मैरीन रिर्सोसेस फरोम सेन्ट्रल वैस्ट कोस्ट ऑफ इंडिया। नैच. इन्टि. ऑफ ओशेनोग्रा. टैक. रिप.।
23. रामाराव के., एम. आर. पी. नायर तथा के सुब्बारमैया (1985), एक्सपैरीमेन्टल फील्ड कल्टीवेशन ऑफ *हिपनिया वेलेन्टी* (टर्न) मोन्ट. एट क्रुसादाई आयलैंड, *प्रो. सिम्प. मैरीन प्लांट्स एडी.* : 5।